आकाश अनन्त है।

आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य'

प्रकाशक :
उत्कर्ष कला केन्द्र
(महार्षि दयानन्द धाम) महादेव
तहसील सुन्दर नगर, जिला मण्डी (हि.प्र.) 174401

प्रकाशन वर्ष : 2009
प्रतियां : 1000
मूल्य : 50/- रु०

(सर्वाधिकार लेखकाधीन)

लेज़र टाईप सैटिंग :
कपूर लेज़र ग्राफिक्स
न्यू मार्किट, सामने आर्य समाज मन्दिर,
चौक अड्डा होशियारपुर, जालन्धर।
मो. : 098159-81832

मुद्रक :
कपूर प्रिंटिंग प्रैस,
न्यू मार्किट, सामने आर्य समाज मन्दिर,
चौक अड्डा होशियारपुर, जालन्धर।

आदरणीया

बहिन इन्दु पुरी जी

को

शुभाशीष

सहित !

दो-शब्द

भ्रतृहरि जी की उक्ति बहुत ही सार्थक है। '**साहित्य संगीत कला विहीन: साक्षात्पशु: पुच्छ विषाण हीन:**'। यह उक्ति हमारे सामने साहित्य की गरिमा को तो प्रकट करती ही है मगर साथ ही साहित्यकार के महत्त्व और दायित्व की ओर भी साफ संकेत करती है। साहित्य सृजन कोई खिलवाड़ न होकर बहुत ही गंभीर दायित्व से परिपूर्ण प्रक्रिया होनी चाहिए। किसी संकुचित दायरे में सिमट कर लिखा गया साहित्य न तो शाश्वत् ही हो सकता है और न ही मानव मूल्यों का पोषक। अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए साहित्यकार का स्वयं मानव मूल्य का पोषक होना अपेक्षित है ताकि वह उन मूल्यों के धरातल पर सामाजिक समरसता व चेतना का संवाहक बन सके। कोई भी जीवन दर्शन या साहित्यिक चिन्तन मानव मूल्यों को उपेक्षा करके पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है। जिस रचना की प्रेरक शक्ति मानवीय आस्था न होकर कुछ और होगी वह न तो स्थाई रचना बन सकती है और न ही चिरन्तनता को प्राप्त कर सकती है। साहित्य को आत्माभिव्यंजन मानने वाले समीक्षक भी साहित्यकार के सामाजिक दायित्व को सर्वथा दरकिनार नहीं कर सके है। वह आत्माभिव्यक्ति का सुख तो भोगता है मगर किसी न किसी रुप में समाज की चेतना, प्रासांगिता तथा प्रेरणा भी उसके भीतर रहती है। साहित्य अपनी मर्यादा के भीतर रहकर ही अपने विशिष्ट उद्देश्य तक की यात्रा पूरी कर पाता है। जो साहित्कार अपने धर्म का निर्वहन नहीं कर पाता उसका साहित्य तो मात्र एक औपचारिकता भर बनकर ही रह जाता है। यहां धर्म का अर्थ कोई मत-मजहब या संप्रदाय विशेष नहीं बल्कि उन मानव मूल्यों का प्रतीक है जो व्यक्ति को ही नहीं बल्कि समष्टि को सत्यता, शिवता और सुन्दरता के उच्चशिखर पर ले जाकर एक सार्वभौमिक समरस्ता का सृजन करने में समर्थ हो।

ऐसे साहित्य का सृजन ही वास्तविक सौन्दर्य की स्थापना और बोध करा सकने में समर्थ हो सकता है। काव्य मर्मज्ञों ने जिस रसास्वादन का विवेचन किया है उसके व्योम को छूने का साहस भी इसी कोटि का साहित्य कर सकेगा। अभिनव गुप्त अपने 'रस-सिद्धान्त' में ऐसे ही सौन्दर्य की भावपरक सत्ता स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार- 'सौन्दर्यानुभूति, देश, काल और कारण-कार्य की सारिणी से परे है, अत: सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में भावक दैनंदिन जीवन की सांसारिकता से कुछ समय के लिए ऊपर उठ जाता है।' पण्डित जगन्नाथ ने '**रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्**' कहकर सौन्दर्य को रमणीता के भीतर सामाविष्ट किया है मगर वे भी सौन्दर्य बोध में संस्कार को ही महत्त्व देते हैं। इन संस्कारों को उत्कृष्टता प्रदान करना ही साहित्यकार का प्रमुख दायित्व है। आज साहित्य का आंकलन जिस सतही रूप में हो रहा है उसके कारण ही साहित्य अपनी गरिमा खोता चला जा रहा है। साहित्य की उत्कृष्टता के बारे में कहा गया है- '**चतुर्वर्ग फल प्राप्ति: सुखागल्पधियार्योद।** (काव्य देव), यदि साहित्य उत्तम कोटि का है तो अर्थ, धर्म, काम की प्राप्ति तो उसे होगी ही, मोक्ष भी प्राप्त होगा।' इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का आधार साहित्य है। निश्चित रूप से साहित्य ऐसी उदात् भावनाओं का संवाहक होना चाहिए जिससे मानव के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो। यथार्थ के नाम पर आज जिस तरह से साहित्य को नग्नता प्रदान की जा रही है वह स्थिति भयावह है तथा इसे बिना किसी प्रकार की देर किए

शाश्वत् सत्य की ओर उन्मुख करने की नितान्त आवश्यकता है। व्यक्ति व समाज के चहुंमुखी विकास का आधार यह सत्य ही है। इस कोटि का साहित्य ही कालजयी और उत्कृष्ट माना जा सकता है। चिरंतनता और शाश्वत् मूल्यों के अभाव में हम उत्तम साहित्त्य की कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। इन मूल्यों का जितना समावेश होगा, साहित्य उतना ही उच्चकोटि का होगा। ऐसा साहित्य ही हमें वास्तविक आनन्दानुभूति तक पहुंचा सकने का सामर्थ्य रख सकता है। बाल्मीकि जी, तुलसीदास जी, कबीर जी तथा सूरदास जी आदि के साहित्य में यही मानव मूल्य सन्निहित है इसीलिए आज तक भी वे हमारे मानस पर पूर्णतः छाए हुए हैं। उनके साहित्य में ऐसी उदात् भावनाएं निःसृत हुई हैं जो आज भी व्यक्ति को आनन्द, उल्लास, सन्तोष और दिशा निर्देश देते हैं। साहित्य की अभिव्यक्ति लेखक के अपने व्यक्तित्व, स्वाध्याय, शैली तथा अनुभूतियों के आधार पर होती है इसलिए किसी भी सृजनकर्त्ता का अपना मानसिक एवं आत्मिक विकास होना अनिवार्य है तभी वह इस प्रकार के अमर साहित्य की रचना कर सकता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उच्चकोटि का साहित्य वह है जिसकी गुणवत्ता तथा प्रभाव विश्वव्यापी अर्थात् सार्वभौमिक हो। उसमें सत्यता, शिवता, सौन्दर्य तो हो ही मगर साथ ही चिरन्तनता भी हो तथा वह विशुद्ध मानवीय भावों एवं शाश्वतता का उद्घाटन करने वाला हो।

'आकाश अनन्त है' साधना की नैसर्गिक स्थिति में निकाले गए कुछ हार्दिक उद्गार हैं जिन्हें अपने सुधि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है। बहुत दिनों से इसे प्रकाशित करने की कामना थी मगर आज के युग में लिखने से अधिक कठिन लिखे हुए को प्रकाशित करवाना है अतः अर्थाभाव में पाण्डुलिपि अलमारी की शोभा ही बनी रहती यदि साहित्य एवं अध्यात्म अनुरागी बहिन इन्दु पुरी जी ने इसके प्रकाशन में स्वतया प्रेरणा से आर्थिक सहयोग न दिया होता सहज, सरल, विनम्र एवं मृदुभाषी इन्दु पुरी जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। साधना, सत्संग और स्वाध्याय तो इनके जीवन के अंग हैं ही मगर प्रत्येक सामाजिक कार्य में भी इनका सहयोग रहता है। गत दिनों इनकी डायरी से कुछ प्रसंग सुनने को मिले तो लगा कि इनमें आध्यात्मिक गहनता और मौलिक चिन्तन के साथ-साथ उच्चकोटि की साहित्य-लेखन क्षमता, शाब्दिक सौष्ठव एवं उत्कृष्ठ शैली में अपनी भावाभिव्यक्ति करने की योग्यता भी है। इन का पूरा जीवन संघर्षों से पूर्ण रहा और संघर्षो की भट्टी में तप कर ही व्यक्ति कुन्दन बन पाता है। वे कुशलतापूर्वक देवीदास गोपालकृष्ण लिमिटिड (विशुद्ध पी मार्का सरसों के तेल का व्यवयास) के कार्य को देख रही हैं और इनके साथ ही देवीदास केवलकृष्ण चेरीटेबल ट्रस्ट की व्यवस्था भी मनोयोग से करती हैं, जहां बारह महीने प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ एवं सत्संग की पावन गंगा प्रवाहित होती रहती है। परमात्मा इन्हें उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु तथा उच्चत्तम आध्यात्मिक अनुभूतियां प्रदान करें-यही कामना है।

विदुषामनुचर :

आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य'
वैदिक वशिष्ठ आश्रम(महर्षि दयानन्द धाम),
महादेव, सुन्दर नगर, जिला मण्डी (हि०प्र०)
दूरभाष : 01907-207592, चलभाष : 094180-53092

संक्षिप्त परिचय :
आचार्य भगवानदेन 'चैतन्य'

जन्मः 15 जुलाई 1948, रिवालसर, जि. मण्डी (हि.प्र.) में। माता पिता का नामःश्रीमती धनवन्ती देवी, पण्डित रामशरण शर्मा।

1. **प्रकाशित कृतियां**: **काव्य**-सुबह की तलाश में, हादसों के बीच, खण्डहर का सफर। **कथा**-अपने अपने इन्द्रधनुष, शब्द-शब्द सोच है, ज़मीन तलाशती जड़ें, मूर्दे की लकड़ी, शिखर शेष हैं, कोख का दर्द। **धार्मिक**-सद्‌बुद्धि की कामना, मुक्ति एवं मुक्ति के साधन, उत्कर्ष की ओर, तप का वास्तविक स्वरूप, चतुर्दिक उन्नति का आधार-स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान क्यों और कैसे? सत्संग साक्षात् कल्पतरू, मनुष्यता के आठ सूत्र, मुमुक्षुत्व का महत्त्व, गीता पर एक हजार एक प्रश्नोत्तर, सोलह संस्कारों का महत्त्व, गुरु और उसका महत्त्व, श्री कृष्ण भक्ति रहस्य, उपनिषद् पर एक हजार एक प्रश्नोत्तर, वेद की महत्ता एवं ईश्वर सिद्धि, प्रभु से मित्रता करें, विद्वानों का संग क्यों करें, अन्य कोई मार्ग नहीं, गृहस्थ को स्वर्ग कैसे बनाएं, सत्यमेव जयते आदि। **हिमाचली**-उच्ची धारा रा धूपा। जीवनी-कान्ति के अग्रदूत।
2. 1974 से निरन्तर आकाशवाणी से प्रसारण।
3. आर्य प्रतिनिधि सभा की पत्रिका 'आर्यवन्दना' का चौदह वर्ष तक सम्पादन, अनेक पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोग, हजारों रचनाओं का प्रकाशन, अनेक सकंलनों में भी रचनाएं प्रकाशित/पुरस्कृत।
4. हिमाचल प्रदेश भाषा एवं संस्कृति अकादमी के अन्तर्गत सर्वेक्षण कार्य। अनेक साहित्यिक, काव्य, साक्षरता, आध्यात्मिक, योगशिविरों/सम्मेलनों का संचालन एवं सहभागिता।
5. हिन्दी साहित्य संगम (रजि.) के महामन्त्री, प्रधान तथा **संरक्षक**, उत्कर्ष कला केन्द्र (रजि.) के **अध्यक्ष**, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के **अध्यक्ष** तथा अखिल भारतीय साहित्य परिषद के **संरक्षक** आदि अनेक संस्थाओं एवं पदों से जुड़कर उल्लेखनीय कार्य व साहित्य एवं हिन्दी सेवा। हिन्दी को हिमाचल प्रान्त की भाषा बनाने के लिए एक लाख लोगों के हस्ताक्षर करवा कर तत्कालीन मुख्य मंत्री को सौंपे।
6. आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश के प्रांतीय आर्यवीर दल संचालक, वेद प्रचार अधिष्ठाता, महामंत्री तथा उपाध्यक्ष, **वरिष्ठ उपाध्यक्ष** और कार्यकारी अध्यक्ष के

पदों पर रहकर राष्ट्र एवं समाज सेवा का कार्य.......

7. **संरक्षक** सार्वदेशिक आर्यवीर दल
8. **सदस्य**-सार्वदेशिक धमार्य सभा।
9. **संस्थापक अध्यक्षः** वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम)
10. संस्थापकः 'वैदिक वशिष्ठ पत्रिका' मासिक
11. वैदिक प्रवक्ता के रूप में नेपाल, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, जम्मू कश्मीर, दिल्ली, चण्डीगढ़, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान आदि के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में मानव मूल्यों की स्थापना हेतु सफलतम प्रचार कार्य।
12. आचार्य भगवान देव 'चैतन्य की काव्य यात्रा' नामक शोधग्रन्थ एक प्राध्यापक द्वारा एम.फिल.के लिए कुरूक्षेत्र युनिवर्सिटी में प्रस्तुत।
13. राष्ट्रीय बौद्धिकाध्यक्षः आर्य युवक परिषद्
14. **कुछ पुरस्कार व सम्मानः** आर्य युवक परिषद दिल्ली (1975), कला संस्कृति भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ मथुरा (1979), भारत लेखक एकता संघ शिमला (1983), आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश (1989), श्री आर.आर. चौहान स्मृति पुरस्कार (1992), बागर साहित्य पुरस्कार (1993-94) कला संस्कृति भाषा अकादमी (1994 अम्मा कहानी), महर्षि सन्दीपनी राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान मध्य प्रदेश (1995), स्वामी शिवमुनि परिव्राजक स्मृति पुरस्कार गुजरात (1996), पानीपत साहित्य अकदामी (1997), दुर्गावती फेलोशिप एवार्ड जयपुर राजस्थान (1998), आर्ययुवक परिषद नई दिल्ली द्वारा 'आर्य श्रेष्ठी अवार्ड' (1999), विक्रमशीला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुरः विद्यावाचस्पति, महाराष्ट्र दलित साहित्य अकादमीः शताब्दी उत्तम नागरिक पुरस्कार (2000), जैमिनी अकादमी हरियाणाःशताब्दी रत्न सम्मान (2000), बनारसीदास वर्मा पुरस्कार हापुड़ (2001), आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान (2002), रामवृक्ष बेनीपुरी जन्म शताब्दी सम्मान (2002), सत्यार्थ-रत्न (2003), अमेरिकन वायोग्राफीकल ईसीच्यूट द्वारा 'वर्ड मैडल ऑफ ऑनर' के लिए नामित (2003), अम्बिका प्रसाद स्मृति रजत अलंकार-2005, सारस्वत सम्मान-2006, साहित्य सागर-2006, आर्य शिक्षक रतन-2006, साहित्य अकादमी पुरस्कार-2007, आर्य वानप्रथी (दम्पत्ति) अजमेर-2008.
15. **वानप्रस्थ में प्रवेशः 1 अगस्त-2006**

-वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम), चौक, डा.महादेव, सुन्दरनगर, जिला मण्डी (हि.प्र.)

दूरभाषः 09107/207592, मोबाइल-94180-53092.

क्रम

1.	अपने ही घर	11
2.	अमरत्व का सूत्र	12
3.	अहंकार मृत्यु है	14
4.	अंह की कारा	16
5.	आनन्द का सूत्र	18
6.	एक ही उपचार	20
7.	कसौटी तुम ही हो	22
8.	गूंगे का गुड़	24
9.	खोजी होवे	26
10.	गहरे चिन्तन में	28
11.	जो तुम हो	30
12.	तुम हो कौन	32
13.	देवता बन गया	34
14.	निपट अकेले हैं	35
15.	निमित्त मात्र	38
16.	उसी का पसारा	40
17.	पूर्ण विश्रान्ति	42
18.	स्थितप्रज्ञता	44
19.	समर्पण स्वीकार करो	46
20.	सारे जहां का दर्द	48
21.	साक्षी की स्मृति	50
22.	शब्द-अर्थ	52
23.	शेष कुछ नहीं	54
24.	ज्ञातम्-ज्ञातव्यम्	56

25. रैन बसेरा 59
26. वासना का अन्त 61
27. स्वयं तृप्ति है 63
28. विद्या का सूर्य 64
29. यही है लक्ष्य 66
30. उसकी हार कैसी 68
31. जीवन का उत्कर्ष 70
32. वही है आत्मवेता 72
33. आत्म-साक्षात्कार 73
34. मन एक भटकाव है 75
35. जीवन-मृत्यु 77
36. अन्तरदृष्टि 78
37. बून्द से सागर 79
38. केवल मैं 80
39. विकल्प स्वीकार न हो 82
40. खुशबू 84
41. मेरा कुछ नहीं जलेगा 86
42. वृत्ति सारूप्य 87
43. मुमुक्षुत्व 89
44. भोग और योग 92
45. तुम ही जानों 94
46. कीचड़ में निर्लिप्त 96
47. जिन खोजा तिन पाया 98
48. अहंकार का महल 100
49. मन की मृत्यु 102
50. अद्‌भुत-मिलन 104
51. आकाश अनन्त है। 107

अपने ही घर

सुख का सागर
हमारे बहुत पास है।
बहुत ही पास
इतना—
जितना हम स्वयं अपने पास हैं।

पर आश्चर्य यह है
हम अपने पास बहते सुख सागर को नहीं देख पाते
नहीं छू पाते।
अपने घर से बाहर निकल जाते हैं
जहां दु:ख है
केवल दु:ख।

सोचते हैं शायद
इस दु:ख के बाद कहीं सुख मिल जाऐगा।
इसी दौड़ में
दु:खों की शृंखलाओं में घिर जाते हैं
रोते हैं, चिल्लाते हैं
फिर भी दु:ख ही दु:ख पाते हैं।

स्वामित्व भूलकर
बन जाते हैं वासनाओं के दास
प्रकृति के यन्त्र
कोल्हू के बैल
किसी सन्त ने क्या खूब कहा है—
'मोहे देख देख आए हासी,
जल में है मीन प्यासी।'
प्यास बुझाने के लिए तो
अपने आंगन में जाना होगा,
अपने ही घर लौट आना होगा।
तृप्ति नहीं है—
बाहर कहीं कुछ भी नहीं ....

अमरत्व का सूत्र

रथ तो रथ है
मालिक को लक्ष्य तक ले जाने वाला साधन
साधन को साध्य मान
कितनी बड़ी भूल की।

मील के पत्थर से चिपटकर
किसी ने क्या मंजिल प्राप्त की है कभी?
वह निर्देश मात्र है—
संकेत है लक्ष्य तक पहुंचने का।
केवल रथ तक ही सिमटकर रहने वाला
कभी कहीं पहुंचा है?

साधन को साध्य मानने से
पूरा क्रम ही उल्टा हो जाता है
बुद्धि रूपी सारथि के भ्रम से
ज्यों ही मन रूपी लगाम ढीली हुई
इन्द्रियां रूपी घोड़े स्वेच्छाचारी होकर
विषयरूपी पगडण्डियों पर भटकते चले गए
लक्ष्य से दूर
बहुत दूर ......मृत्यु तक।
बल्कि उससे भी परे
महामृत्यु तक।

अब भी समय है
बुद्धि को जागरूकता देने का

मन रूपी लगाम को स्वाधीन करने का
फिर इन्द्रियां विषयों के भ्रम में नहीं भटकेंगी
कच्छुआ ज्यों समेट लेता है अंगों को
ऐसे ही सिमट जाऐंगी
समस्त इन्द्रियां विषयों से।

उसी दिन हो सकेगा लक्ष्य बोध
हो जाएगा स्वामित्व का स्मरण
यह स्मरण ही तो-
अमरत्व का सूत्र है।

अहंकार मृत्यु है

अहंकार ही है बोझ की गठड़ी
अहंकार हमें हल्का नहीं होने देता
जितना बड़ा होगा अहंकार का वृक्ष
उतने ही अधिक होंगे दु:खों के फल।

अहंकार मूलभूत भूल है
यह आनन्द का फूल प्रस्फुटित नहीं होने देता
यह कभी तृप्त नहीं होता।
ज्यों ज्यों कुछ पाता है
कुछ और भी बड़ा हो जाता है।

अहंकार की अन्तिम परिणति
मृत्यु है।
साधारण मृत्यु नहीं-
आत्महत्या।

ये आत्महन्ता युगों-युगों तक
अपने ही अहंकार के वशीभूत
अन्धकार पूर्ण योनियों में भटकते हैं,
प्रकाश का आवरण है अहंकार।

समर्पण स्वयं अहंकार की मौत है,
हल्का, बिल्कुल हल्का होने का मूलमन्त्र।
समर्पण बनाता है हमें-
विशाल ....विराट............
समर्पण से व्यक्ति आत्मचेता बन जाता है।
पूर्ण प्रभु के प्रति समर्पण ही-

पूर्णता देता है।

समर्पण जड़ता तोड़,
गति देता है।
अहंकार क्षुद्रत्व है
और समर्पण-
बून्द का सागर बन जाना।

अहंकार मृत्यु है............
समर्पण अमरत्व ....

अहं की कारा

रथ भटक रहा है
इधर......उधर,
यहां......वहां
जाने कहां......कहां ?

सारथिहीन रथ की
यही परिणति है.....
यही स्थिति है।

अल्पज्ञ को सारथि बना भी दें
वह भी उसे लक्ष्यहीन ही करेगा
सारथि वही उपयुक्त है
जिसे लक्ष्य का पता हो
जो जानता हो, जाना कहां है।

उस सर्वज्ञ को ही सारथि बना लो
वही पहुंचा सकेगा सुरक्षित इस रथ को
अपने घर तक।

समर्पण ही पहुंच है
जब सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में .....
फिर डर काहे का ?

वही मूढ़ता हरेगा
विक्षिप्तता नष्ट करेगा
विवेक से जोड़ेगा।
वही दे सकेगा एकाग्रता
बना सकेगा निरूद्ध भी।

और कब तक मैंपने का बोझ ढोते रहोगे?
कब तक अहं की कारा में कैद रहोगे?
कब तंक रथ के डोलने से स्वयं डोलते रहोगे?
कब तक भयभीत रहोगे?

समर्पण अपनी बोगी को ईंजन से जोड़ना है
अहं की कारा तोड़ना है......
क्षुद्रत्व से महान बनना है .....
पोखर से नदी होना है।

अब सौंप दो सब कुछ
अभय होने का अन्य कोई मार्ग नहीं
लक्ष्य पाने की और कोई युक्ति नहीं
बिना लक्ष्य तृप्ति नहीं.....
समर्पण बिना मुक्ति नहीं।

आनन्द का सूत्र

सत्य को ग्रहण करने में
सर्बदा उद्यत रहना चाहिए।

सत्य है ब्रम्ह
सत्य है आत्मा
सत्य है-धर्म।

सार्वभौमिकता सत्य है
सत्य तृप्ति है--असत्य प्यास
सत्य ज्ञान है--असत्य अज्ञान
सत्य लक्ष्य है--असत्य भटकाव
सत्य पूर्णता--असत्य अभाव।

स्व स्मृति
सुख है-ज्ञान है।
स्व विस्मृति
दु:ख है-अज्ञान है।

काम में
क्रोध में
लोभ में
अहंकार व मोह में
पद और प्रतिष्ठा में
सुख नहीं - आनन्द नहीं।

अज्ञान की पगडण्डियों में भटकना ही

आत्म हनन है.....
आत्महत्या है।

अज्ञान के प्रति
अहर्निश जागरण ही
आनन्द का सूत्र है।
आत्म स्मृति है
आत्म तृप्ति है
सत्य है
और शाश्वत है....।

एक ही उपचार

कितने ही आश्रय
बिखर बिखर जाते हैं
कोई स्थाई सिद्ध नहीं होता।

धन का
पद का
रिश्तों का आलम्बन
कितना अस्थाई है
यह हम सबके अनुभव की बात है।

कितनी ही बार
कितने ही घोंसले तैयार किए
सभी बिखर कर
तिनका तिनका ही हुए।
कितनी ही बार रिश्ते जोड़े
बहुत से अपने बनाए
पर वे कब स्थिर रह पाए?

नदी के बहाव में बहते व्यक्ति द्वारा
पानी को मुट्ठी में भरकर आश्रय लेने जैसे
ये सब उपक्रम
मात्र छलावा ही तो सिद्ध हुए.....

पानी कभी
मुट्ठी की पकड़ में नही आया
कभी आ सकता भी नही।
हर अतृप्ति से बचने का,

दु:ख से छूटने का,
मृत्यु से पार उतरने का,
मात्र एक ही उपचार है-

उस जगनियन्ता का आश्रय।
इस आलम्बन से श्रेष्ठ
और कहीं कुछ है ही नहीं।

कसौटी तुम ही हो

आज तक
तुम्हारा किसी ने कुछ नहीं बिगाड़ा है।
कोई कुछ तुम्हारा बिगाड़ सकता भी नहीं।
तुम्हें लग सकता है ऐसा
मगर वास्तव में किसी के बिगाड़ने से
तुम्हारा कुछ बिगड़ ही नहीं सकता।

यह सत्य है
आदमी स्वयं ही अपना मित्र है
और शत्रु भी।
हर उत्थान औ पतन की
कसौटी तुम ही हो-
स्वयं तुम ही।

वासनाओं की दलदल से ऊपर उठकर
मानवता की ऊँचाईयों को छूना
स्वयं से दोस्ती करना है।
और मानवता से बहुत दूर भटक जाना
वासना के पंक में डूबना
स्वयं से दुश्मनी है।

स्वयं से दोस्ती की पराकाष्ठा को
सीमा में बान्धना बेमानी है
इसका विस्तार जितना भी अधिक हो
बहुत कम है।
क्योंकि आसमां के आगे आसमां और भी है।

साधना का पथ
वासनाओं से उपरामता
स्वयं की पहचान

अहंकार की समाप्ति
दिव्यता का सृजन
स्वयं से मित्रता है।

कामनाओं के जंगल में भटकना
स्वयं से अन्जान
मैपने की कालकोठरी
वासनाओं की दलदल
चहुंमुखी विनाश स्वयं से शत्रुता है।

आत्मा के स्तर पर जीना ही
अपना मित्र होना है,
और इसके विपरीत है-
शत्रु होना।

आत्मचेता व्यक्ति ही
देव है
अपना मित्र है।

आत्महन्ता है
असुर
अपना ही शत्रु।

देव पुण्य का सृजन करता है
और असुर पाप का।
पाप का कुफल है-दु:ख,
कष्ट-क्लेश।
पुण्य का सुफल है
सुख
आनन्द
शान्ति।

केवल शरीर के लिए जीना-
असुरत्व है।
आत्मा के लिए जीना ही-
देवत्व है।

गूंगे का गुड़

तप
स्वाध्याय
और समर्पण से
दूर हुई विक्षिप्तता।

अगर पथ पर बढ़ने की आस्था
और भी बलबती हुई।
यम-नियम पर चलने की प्रवृत्ति
और भी सघन हुई।

आसन जमा
प्राणायाम से प्राण सधे।
प्रत्याहार से
भीतर की ओर मुड़ा-
इन्द्रियों का समूह
वासनाएं कहीं दूर छूटने लगीं।

एक निश्चित धारा बनीं
जो हुई ध्यान में परिवर्तित
और फिर-
समाधि उपलब्ध हुई।

युगों-युगों से
कितनी ही योनियों में भटकता राही
अपने घर लौटा।

यह अनुभूति अनुपम है
अद्भुत है
आनन्दमयी है
जाने कैसी है.......

शब्द गूंगे हैं
अन्तर चक्षु विस्मित है
मन लापता है।

बस एक अभेद्य एकात्मकता है
आनन्द स्रोत की निरन्तरता है
आह! जो भी है......
अप्रत्याशित है........
अवर्णनीय है........
चिरन्तन है ....
गूंगे का गुड़ है ....

खोजी होवे

कभी किसी तालाब में
छाता खोलकर
डूबकी लगा सकते हो?

वित्तैषणा,
लोकेषणा,
और पुत्रैषणा।

काम,
क्रोध,
लोभ,
मोह,
और अहंकार के छाते खोलकर
अपने भीतर झांकने का
तुम्हारा प्रयास कुछ ऐसा ही है।

चाहे कितनी ही बार प्रयास करो
और भी अधिक वेग से
ऊपरी सतह पर ही लौट आओगे।

अन्तर तक डूबने के लिए
अर्न्यात्रा पर निकलने के लिए
स्व स्वरूप को पहचानने के लिए
ये समस्त छाते बन्द करना
अनिवार्य है।

खुले छातों से डूबकी लगाते
कितने ही युग बीत गए
तह तक पहुंच नहीं सके कभी।
कभी पहुंच सकोगे भी नहीं।
एक बार छाते बन्द करके
दृढ़ता से प्रयास हो तो -

'खोजी होवे तुरंत मिल जाऊँ,
एक पल की तलाश में ......'

कबीर की यह उक्ति
अक्षरशः चरितार्थ हो जाए..........

गहरे चिन्तन में

मन से ही होता है
स्वर्ग का सृजन
नरक तक भी पहुंचा देता है मन।
मन की स्थिति विशेष ही
स्वर्ग है-नरक है।

मन स्वतः नहीं चलता
लगता है-मन चलता है।
इसी भ्रम में हर व्यक्ति
मन के समक्ष हार जाता है।

प्राण के बिना
चेतना के बिना
आत्मा के बिना
जैसे शरीर जड़ है
वैसे ही मन भी नहीं है चेतन,
जड़ है बिल्कुल जड़।

तुम कहते हो मन गया
मगर-
जड़ वस्तु तुम्हारे भेजे बिना
कहीं जा ही कैसे सकती है?

मन स्वयं कहीं नहीं जाता
तुम ही उसे भेजते हो।
भेजते हो तो रोक भी सकते हो।

बस यही सूत्र है मन को साधने का।
मन के द्वारा ही मन साधा जा सकता है।

आत्मा है 'कैटेलिटिक एजैण्ट'
जिसके सहयोग से मन चेतन सा लगता है-
पर है नहीं।
जब मन नहीं चेतन
फिर विचार भी उसके कैसे हो सकते हैं?
हम चाहें तो उसे स्वर्ग की ओर प्रेरित कर सकते हैं
चाहें तो नरक की ओर हांक सकते हैं

जब भी कोई बुरा विचार उठे
गहराई से सोचो..........
ढूंढो विचार उठने का स्त्रोत ....
फिर कुछ और अधिक गहरे चिन्तन में उतरो........
तुम बन जाओगे द्रष्टा

विचारों सहित
मन लुप्त हो जाएगा
एकदम लापता।

जो तुम हो

जो तुम समझ रहे हो
वह तुम नहीं हो
जो तुम हो
वह तुम नहीं समझ रहे।

शरीर नहीं हो तुम
शरीर तुम्हारा है।
तुम बच्चे थे
जवान हुए
बूढ़े हुए
और मर गए
क्या वह तुम थे?
नहीं न..........

ये सब शरीर के धर्म हैं
शरीर जन्मता है
जवान होता है
बूढ़ा होता है
और मर जाता है।

कभी चिन्तन में नहीं उतरा कि-
बच्चा होने की स्मृति
जवान होने की स्मृति
बूढ़ा होने की स्मृति
मर जाने की स्मृति रखने वाला कौन है?
कौन है द्रष्टा?
वही तो तुम हो।

तुम्हारा शरीर से संयोग हुआ
शरीर ने जन्म लिया
वही बच्चा हुआ
जवान हुआ
और बूढ़ा हुआ।
और तुम्हारा उससे वियोग होने पर
वह मर गया।
तुम जन्मते नहीं
जवान नहीं होते
बूढ़े नहीं होते
और मरते भी नहीं।

इसीलिए तो-
जो तुम समझ रहे हो
वह तुम नहीं हो
जो तुम हो
वह तुम नहीं समझ रहे।

तुम हो कौन

तुम्हें चाहना क्या चाहिए
तुम चाहते क्या हो,
अस्थिर मति से यह निर्णय होना संभव नहीं।
जब तक यह पता न चले कि तुम हो कौन
तब तक तुम्हारी मांग का पता चल भी कैसे सकेगा?

वास्तव में ही
दुनिया में वह व्यक्ति सदा दुःखी रहता है
जो नहीं जानता
वह चाहता क्या है?

उसे क्या चाहिए
इसका पता तब तक नहीं चल सकता
जब तक वह न जाने कि-
वह है कौन?

तुम्हारी तृप्ति के लिए
वही तो चाहिए
जो तुम हो......

जब तक शरीर के ही स्तर पर जीओगे
शरीर की ही मांगों में उलझे रहोगे........
तुम्हें चाहिए केवल-
रोटी, कपड़ा और मकान।
क्षणिक सुख और अतृप्ति का जंगल पैदा करने वाले
भोग, केवल भोग ......

तुम्हारी हर दौड़
कामनाओं में घेरे में उलझकर रह जाएगी।

उसी वर्तुल में कोल्हू के बैल सम
बस कहीं भी पहुंचे बिना.......
चलते रहोगे.........
ज्यों ही स्वयं के स्तर पर,
आत्मा के स्तर पर जीना आरंभ करोगे
सारा क्रम ही बदल जाएगा।
तभी पता चल सकेगा-
जाना कहां है ?
कहां है मंजिल.........क्या है लक्ष्य...... ?

वही वास्तविक कसौटी होगी-
सफलता-असफलता की,
सुख और दु:ख की,
पाने और खोने की।

जिसे शरीर के स्तर पर जीते जीते
समेटते रहे
वह सब उस समय बेमानी हो जाऐगी।
ये भोगों के पीछे अन्धी दौड़
ये भौतिकता के अम्बार समेटने की अतृप्त चाह
तब कितनी बचकानी हो जाऐगी........

कितना अस्तित्वहीन लगेगा यह सब
तब यकीनन तुम
वह सब नि:शुल्क भी नहीं लेना चाहोगे
जिसके लिए अनमोल जीवन का प्रत्येक क्षण
दांव पर लगाते रहे थे।

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि तुम्हें चाहिए क्या
इससे मूल्यवान है
यह जानना कि-
तुम हो कौन ?

देवता बन गया

वक्त कभी किसी की प्रतीक्षा नहीं करता
वक्त तो नाम ही गति का है।
हां यदि हम चाहें तो-
वक्त की बहती नदी से
अनगिनत न्यामतें समेट सकते हैं।

वक्त को यूं ही गुजरने दें
तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा
वक्त की रफतार का कोई अन्त नहीं,
कोई सीमा नहीं।

आदमी चाहे तो-
वह भी वक्त के पंख बन सकता है
छू सकता है आकाश की ऊँचाईयां
नाप सकता है सागर की गहराईयां।

वक्त सबसे बड़ी पूंजी है
यह सूत्र जिस किसी के हाथ लग गया
उसका नाम-
इतिहास के नक्षत्रों से जुड़ गया।

वक्त का अपव्यय
अपना ही अपव्यय है
वक्त के घोड़े के पांव की ठोकर ही
पतन है।
पीठ पर चढ़ अभियान करना ही
उत्थान है।

वक्त की लगाम पकड़कर
जिसने भी इसे अनुकूल बना लिया
वही देवता बन गया।

निपट अकेले हैं

इस नगरी में
बहुत अकेले हैं सभी।
अकेले-
निपट अकेले।
अकेले ही है उत्थान
और अकेले ही हैं पतन भी।

अकेले ही हम स्वयं को छलते हैं-
अकेले ही करते हैं पुरस्कृत भी।
हम स्वयं ही से प्यार करते हैं
और स्वयं ही से नफरत भी।

ऋषि कहते हैं-
'पिता पुत्र को इसलिए प्यार नहीं करता
कि वह वास्तव में पुत्र को प्यार करता है।
पुत्र भी पिता को इसलिए प्यार नहीं करता
कि वह वास्तव में पिता को प्यार करता है।

पति, पत्नी को इसलिए प्यार नहीं करता
कि वह वास्तव में पत्नी को प्यार करता है।
पत्नी भी पति को इसलिए प्यार नहीं करती
कि वह वास्तव में पति को प्यार करती है।

पिता पुत्र को इसलिए प्यार करता है
क्योंकि वह अपनी आत्मा को प्यार करता है।
पुत्र भी पिता को इसलिए प्यार करता है
क्योंकि वह अपनी आत्मा को प्यार करता है।

पति पत्नी को इसलिए प्यार करता है
क्योंकि वह अपनी आत्मा को प्यार करता है।
पत्नी भी पति को इसलिए प्यार करती है
क्योंकि वह अपनी आत्मा को प्यार करती है....'

गहराई से देखें-
हमारे सभी सम्बन्ध,
आत्मतृप्ति की धरातल पर ही टिके हैं।
जहां आत्मतृप्ति को जरा सी भी ठेस लगी-
सारे नाते
रेत की दीवार के समान
सरसराकर बिखर जाते हैं।

यदि वास्तव में ही,
सभी एक दूसरे को प्यार करते होते
तो कभी कोई पिता किसी पुत्र को न त्यागता,
कोई पुत्र कभी किसी पिता से मुंह न मोड़ता।
कोई पत्नी पति से
या पति पत्नी से,
सम्बन्ध विच्छेद न करता।

इसलिए जिसकी तृप्ति के लिए
प्रसाधन खोजते हैं,
आधार खोजते हैं,
आश्रय खोजते हैं-
उसी को प्यार करना चाहिए
उसी का मनन-चिन्तन करना चाहिए
उसी को जानना चाहिए।

फिर सन्देह के कपाट खुल जाएगें
सभी नाते आत्मिक स्तर पर जुड़ जाएेंगे
सही मंजिल का सुराग मिलेगा
लक्ष्य साफ होगा।

हमारे भीतर वह आँख पैदा होगी
जो पहचान सकेगी
कौन है सच्चा आश्रय।
अभी तो हम अकेले हैं-
निपट अकेले हैं.......

निमित्त मात्र

हम तो हैं
निमित्त मात्र,
अंकिचन,
महाशक्ति के हथियार।
हमारे विरोध काम आते ही कब हैं?
कहां बस चलता है हमारा?

कभी देखी है बेबसी?
अपना धन, बल, वैभव, सौन्दर्य
और प्रियजन पल में छूट जाने की?
क्या है अपना-
आँख बन्द हो जाने के बाद.... ?

फिर भी क्यों नहीं होती आत्मस्वीकृति
अपनी बेबसी-
अंकिचनता की.... ?

मैं हूँ, मैं
मेरा है, मेरा
इस भावना के तन्तु
क्यों शिथिल नहीं होते... ?

क्यों कन्धों पर भारी बोझ लिए
यात्रा को घिसटते हैं.....
थके-थके......हारे-हारे.....

अहंकार का ही तो बोझ है सारा
अहं टूटे तो बोझ है ही कहां?
पूर्ण समर्पण-
हमें क्षण में चिरन्तनता दे सकता है
हमारे हाथ अमरता की पूंजी लग सकती है।

अनुभूति के स्तर पर
महसूस कर सकते हैं
अपनी दिव्यता को।

मैं मिटा देने पर
कुछ मिटेगा नहीं-
असीमित हो जाऐगा।
समर्पित होना नहीं है अस्तित्वहीन होना
बल्कि समूचे अस्तित्व को पा लेना है।

उसी का पसारा

अपने होने का भ्रम
कहां कहां नहीं भटकाता रहा?
जबकि-
मैं तो था ही नहीं,
सब कुछ वही है।
मैं तो जैसे......
हूँ ही नहीं।

मैं होने के भ्रम से
परे है वह।
मैं मिटा तो सब प्रत्यक्ष हुआ.....
सब साफ हो गया.....
सब में तही तो निवास कर रहा है।

जड़ से चेतन तक
सब उसी का पसारा है।

चल वही
अचल वही
पास वही
दूर वही
भीतर वही
बाहर वही।

पृथ्वी वही
अन्तरिक्ष वही
द्यौ वही।
नदियां वही
सागर वही

आँख की ज्योति वही
सूर्य का प्रकाश वही
चान्द की चान्दनी वही/तारों की झिलमिल वही।
धरती की गन्ध वही
हर एक अनुबन्ध वही
अग्नि का तेज वही
वायु का वेग वही
आकाश का विस्तार वही
जल की धार वही।

वह प्रकाशों का प्रकाशक
अन्धकार से परे
सर्वचक्षु....।

वह महान से महानतम
उसका पार पाना असंभव...
दुस्तर......

जो भी है
जितना भी है
उससे आगे
और भी है........
उससे भी बड़ा है।

वह अनन्त है
अद्‌भुत है
सत्यम् है
शिवम् है
सुन्दरतम् है।
ऐसा है–
पर केवल ऐसा ही नहीं।
इतना है–
पर केवल इतना ही नहीं......
नेति.........नेति.........नेति.........

पूर्ण विश्रान्ति

फिर-फिर लौटते हो प्यासे
पुनः-पुनः डूबते हो
भोगों की भट्टी में
और, बार-बार खाली हाथ
अतृप्त-प्यास लिए लौट आते हो।

और कितनी बार
यूँ ही डूबोगे?
प्यासे लौटोगे?
यह उपक्रम तो महीनों नहीं,
वर्षों नहीं
युगों युगों से अविरल चल रहा है
कब टूटेगा यह सिलसिला?

कितने जन्म यूँ ही भटके हो?
कितनी बार सजी है बारातें?
बन्धे हैं सेहरे?
सजी हैं मांगें?

कितनी बार उजड़े हैं आशियानें
लुटे हैं कारवां?
बिखरे हैं सेहरे
सूनी हुई हैं मांगें... ?

कितनी बार कितने सम्बन्ध जुड़े?
सपने सजाए?

अपने बिछुड़े ?
सपनें टूटे ?
अर्थियां उठीं ?
मरघट जले..... ?
पुन:पुन: क्यों भटक जाते हो
उन्हीं पगडण्डियों में
कब तक चलेगी यह यायावरी ?

कितनी बार महल, अट्टारियां सजीं
टूटी हैं कितनी बार ?
कितनी बार बैंक बैलैंस भरे
और छूट गए हैं कितनी बार ?

कब तक यूँ लावारिस मरोगे
क्यों नहीं जुड़ते उस महाशक्ति से
जहां भटकाव नहीं, ठहराव है,
अपनापन है,
आनन्द है,
निर्भयता है-
और पूर्ण विश्रान्ति।

स्थितप्रज्ञता

यह कैसा संग्राम चल रहा है?
बाहर भीतर........
अहर्निश.........

कभी भौतिकता के सुन्दर पथ पर
आरूढ़ होकर
समूची वासनाओं में डूब जाने को मन करता है
कभी घड़ी भर को छू जाती है-
विरक्ति भी।

इसी अस्थिरता में जीवन के क्षण
चुकते जाते हैं।
इधर तो कभी उधर के हिण्डोले पर
झूलता व्यक्तित्व
कुछ भी न हो पाने की स्थिति में
विक्षिप्त है।

क्या यही है-
असुर और देवों का संघर्ष?
हम ही हैं देवता?
और असुर भी?
क्या असुर होना बेमानी है?
क्या देवता होना है लक्ष्य जीवन का?

या देवासुर संघर्ष से परे
हम बन जाएं द्रष्टा मात्र?

हमें न छू पाए बुरा होने का क्षण
अच्छा होने का दर्प भी हमसे दूर रहे
क्या उसी में है जीवन की सार्थकता ?

कुछ होने की चाह
कुछ न होने से परे
होने न होने का भेद जहां समाप्त हो।
क्या वह स्थिति ही-
पूर्णता की स्थिति नहीं है ?
क्या वही है-कैवल्य ?
अपनापन,
घर वापसी-
स्थितप्रज्ञता ?

प्रभो राह दिखाओ
इस भीषण संग्राम में
कुछ भी साफ नहीं......
स्पष्ट नहीं........

समर्पण स्वीकार करो

हे भगवन्!
यह मैं किन अनन्त
अज्ञात
अपरिचित गहराईयों में डूब गया हूँ।

मैं कौन हूँ,
कहाँ हूँ
मार्ग किधर है,
कहाँ से चला था,
क्यों चला था,
कुछ भी तो मालूम नहीं।
कहां पहुंचना है-
आभास तक नहीं।

अन्धकार नहीं,
प्रकाश भी नहीं।
किसे पुकारूं,
कैसे पुकारूं,
मालूम नहीं।
संशय से भरा......
आस्था से दूर......
यह कौन सा मुकाम आ गया है।

एक सन्नाटा है-
अन्तहीन सन्नाटा।
खामोशी-
गहरी खामोशी।

मेरे मौन के अर्थ,
स्वयं ही पढ़ो।
गहराई को स्वयं ही नापो।
भटकाव में हूँ या सहारे पर
वहाव में हूँ या किनारे पर
तुम ही जानों-
बस मेरा समर्पण स्वीकार करो.........

सारे जहां का दर्द

सब जगह है उसी का नूर
वह प्रकाशित है ग्रह-उपग्रह में
उसी के शासन में समूचा ब्रह्माण्ड फैल रहा है
सब जगह है वह
पर दिखता नहीं।

वह नहीं है इन आँखों का विषय
आँखों से उसे देखा भी कैसे जा सकता है?
आँखें हैं भौतिक,
वह अभौतिक है।

वह भौतिक इन्द्रियों का विषय ही नहीं,
उसे देखने के लिए तो-
अभौतिक आँख अपेक्षित है,
वह आँख है-आत्मा।

उसी आँख से वह दिख सकेगा
इसलिए सारे उपक्रम केवल
उस आँख को पैदा करने हेतु ही हैं।
जब वह आँख पैदा हो जाती है
सारे ब्रह्माण्ड में वही वह दिखाई देता है।

जो अपनी आत्मा से-
परमात्मा को देख लेता है
उसे राजा से रंक तक
सारा संसार ब्रह्म में परिलक्षित होता है।

फूट पड़ता है हृदय में
प्रेम का अद्‌भुत स्रोत
उसके लिए कोई भी पराया नहीं रहता।
ऐसी उपलब्धि वाले को-
कोई शोक नहीं रहता
क्योंकि कोई मोह नहीं रहता
सारे जहां का दर्द
उसके दिल में समा जाता है।

साक्षी की स्मृति

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि
जैसी वृति वैसी दृष्टि।
वृति अविवेकमय हो-
व्यक्ति का पतन होता है।
और विवेकमय हो-
तो उत्थान।

चंचल मन ही
अविवेक की पगडण्डियों में भटका देता है।
अचंचलता ले जाती है राजपथ पर।

काम,
क्रोध,
लोभ,
मोह,
और अहंकार,
भ्रमित मन की ही उपज है।

वही है स्रोत हर एषणा का-
उसे काम की हल्की सी हवा,
कामी बना देती है।
क्रोधी, लोभी, मोही और अहंकारी बना देती है।

विक्षिप्तता में
अपने स्थायित्व की पहचान नहीं होती-
भीड़ में घिरे हुए व्यक्ति जैसी,
स्थिति हो जाती है।

जिस एषणा का धक्का लगा-
उधर ही लुढ़क गया.........
वैसा ही बन गया.........
बल्कि उसका समूचा व्यक्तित्व ही,
किसी एषणा का हिस्सा बन जाता है।
ऐसे में तीन सूत्र
समूचा क्रम बदल सकते हैं-
विषयों के प्रति अनासक्ति
चित्तवृत्तियों के प्रति जागरुकता
और साक्षी की स्मृति।

शब्द-अर्थ

गहरे अन्धकार में है
जो अविद्या के उपासक हैं-
अज्ञानी।
उससे भी गहरे अन्धकार में हैं
जो विद्या में रत हैं-
पाण्डित्य के अहंकारी।

ज्ञान नहीं है शाब्दिक आडम्बर
ज्ञान भीतर का प्रकाश है।
शब्द बाहरी आवरण मात्र है-
अर्थ महत्त्वपूर्ण है।

शब्द है वस्तु
अर्थ रस है.....स्वाद है।
शब्द की यात्रा यदि-
अर्थ की महायात्रा न बनी,
तो शब्द निरर्थक है।

शब्द सवालों का जंगल
अर्थ समाधानों के फूल।
शब्द शरीर हैं-
अर्थ प्राण।

प्राण प्रतिष्ठा रहित शब्द-
निर्जीव है......... जड़ है......
मृत है।
अर्थ चैतन्यता......जागरुकता.....

अमृतानुभूति है।
शब्द कथन मात्र
अर्थ अनुभूति है।
शब्द भूमि
अर्थ व्योम है।
शब्द मूर्त
अर्थ अमूर्त हैं।

शब्द परिमित
अर्थ अपरिमित।
शब्द निरूक्त
अर्थ अनिरूक्त हैं।

शब्द कोरा पाण्डित्य
अर्थ संन्यास है।
शब्द द्वार
अर्थ प्रवेश है।

शाब्दिक यात्रा ठहराव
अर्थ गति है।
शब्द आँख
अर्थ दृष्टि है।
शब्द अभाव
अर्थ सम्प्राप्ति है।

शेष कुछ नहीं

अन्थ योगानुशासनम्।

अब तक कामनाओं के बिहड़ वन में
कभी यहां तो कभी वहां,
कुछ पाने की चाह में भटकता रहा।
आसमान से गिरकर
खजूर पर अटकता रहा।

मिला केवल भटकाव
एक अन्तहीन अतृप्ति।
वासनाओं में डूबा,
डूब-डूबकर प्यासा उभरा....

फिर डूबा
फिर अतृप्त ही लौटा।
जाने कितनी ही बार
पर मिला कुछ भी नहीं
मिलना था भी नहीं कुछ।

जहां खोजता फिरा
वहां वह है ही नहीं।
ये वासनाओं के भोग-
उस आनन्द भण्डार की परच्छाईयां मात्र है,
परच्छाई भला किसी ने पकड़ी है आजतक?

पर तू भटकता रहा ही नहीं.....
भटक रहा भी है।
बहुत बार प्रत्यक्ष हुआ-

अल्पसुख एक नई प्यास का ही तो आरंभ है,
एक दौड़ की समाप्ति पर-
एक और दौड़ की तैयारी।

भूमा सुख है परम तृप्ति,
हर प्यास का अन्त,
हर दौड़ की समाप्ति।
अब भी लौट आ
वास्तविकता को स्वीकार ले।

योगपथ पर आरुढ़ होकर
छू ले जो 'अस्तित्व' है।
जो वह है, वही तो है-
शेष कुछ नहीं......... कुछ भी नहीं.........

ज्ञातम्-ज्ञातव्यम्

कौन दुःख चाहता है जीवन में ?
किसे सुख की कामना नहीं ?
सभी सुख ही तो चाहते हैं.........
भरपूर सुख.........अनन्त सुख।

यह मानव बड़ा भोला है
जहां है दुःख, वहां खोजता है सुख
सुख का स्रोत विस्मृत है।

सुख सागर की ओर पीठ करके-
पुकार रहा है-
सुख-आनन्द।
आनन्द निर्झर से आँखें मून्दे पुकार रहा है-
सुख-आनन्द।

वह सूत्र तो हमारी अपनी ही मुट्ठी में है-
चिन्तन की गहराई में उतरें तो सही।
पहचानें तो सही-
प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा को।

प्रकृति सत्य है

जीवात्मा सत्य है-
चेतन है।

परमात्मा सत्य है,
चेतन है-
और आनन्द है।
वही है सच्चिदानन्द
शेष सत् है
चित् है
पर आनन्द नहीं।

प्रकृति साधन है
जीवात्मा साधक है
और परमात्मा है साध्य।

साधक तो सब हैं,
एक साधन को साध्य मान बैठा है
दूसरा साधन को साधन-
साध्य को साध्य मानकर चला है
यही है सुख और दु:ख का स्रोत।

अज्ञानता ही दु:ख का मूल है
ज्ञान ही सुख का स्रोत।

अज्ञानी अशुद्ध ज्ञान,
अशुद्ध कर्म,
और अशुद्ध उपासना में रत है।
यह अशुद्धता ही दुरित् है.....दु:ख है।

ज्ञानी शुद्ध ज्ञान,
शुद्ध कर्म
और शुद्ध उपासना में निमग्न है।
यह शुद्धता ही भद्र है..... सुख है।

ईश अनुकरण धर्म है
ईश विमुखता अधर्म।
ईश के गुण--कर्म-स्वभाव का ग्रहण-
ईश अनुकरण है।
इनका त्याग-
ईश विमुखता है।
ईश अनुकरण सुख है-
विमुखता दुःख।
ईश विमुख युगों प्यासा भटकता रहेगा
ईशानुरक्त उपनिषद् के स्वर में कहेगा-
ज्ञातम् ज्ञातव्यम्.........प्राप्तम् प्राप्तव्यम्.........

रैन-बसेरा

पाण्डाल सजा है
दिशाएं सुवासित हैं
हवा स्तब्ध है
पूर्व आलोकित है।

भिक्षुक आचार्य को अपलक निहार रहे हैं
आँखें स्थिर है
श्रोत्र आतुर है
ह्रदय आप्लावित है
मन द्रवित है
भावनाएं उद्‌बुद्ध हैं
सब कुछ दिव्यतापूर्ण है.........
अद्‌भुत है.........

आचार्य आँखें बन्द किए
आसन पर मौन है
चिर तृप्त है
शान्त है.........
अन्तरमुख है।

सहसा आचार्य ने आँखें खोली
भिक्षुओं पर कृपादृष्टि डाली
कुछ कहने को उन्मुख हुए।

तभी सहसा
एक पक्षी कहीं से आकर

अपने पंख समेट-
खुली खिड़की के कपाट पर बैठ गया।

आचार्य ने उधर दृष्टि घुमाई
भिक्षुओं की दृष्टि भी स्वत: ही-
उधर घूम गई।
कुछ देर के लिए
दृष्टियाँ जैसे स्थिर हो गईं
आचार्य जी, भिक्षुक भी-
एकटक पक्षी को देखते रहे........

कुछ समय बीता
पक्षी ने पंख फड़फड़ाए
और लम्बी उड़ान भरकर
आकाश की नीलिमा में-
कहीं अदृश्य हो गया।

आचार्य जी आसन से उठते हुए बोले-
'बस आज का उपदेश
इतना ही.......'

वासना का अन्त

बहुत विचित्र है
तृप्ति-अतृप्ति का गोरख धन्धा
एक पल जिसे व्यक्ति ठीक कहता है,
दूसरे ही पल वह गलत लगता है।

जिसके बिना एक पल जीने की कल्पना से भी डरता है
दूसरे ही पल उससे बुरा और कुछ नहीं लगता।
जिसे अभी समझता है तृप्ति का स्रोत
बाद में वही अतृप्ति का उत्स लगता है।

सही क्या है
और गलत क्या
मानव का समय
अक्सर इसी विक्षिप्तता में बीत जाता है।

विषयों के भोगने में तृप्ति होती
तो क्यों न एक बार भोगने से ही मिल जाती?
क्यों बार-बार भोगने पर भी-
व्यक्ति प्यासा लौटता?

ज्यों-ज्यों व्यक्ति भोगों में डूबता है
प्यास और अधिक बलबती होती है
क्योंकि वहां तृप्ति तो है ही नहीं,
मात्र तृप्ति का भ्रम है।

इसी भ्रम में मानव
भोगों से तृप्ति पाने की

एक अन्तहीन दौड़ का हिस्सा बन जाता है।
ऐसी दौड़-
जो किसी तृप्ति तक नहीं पहुंचाती.........
मात्र भटकाती है।
संभवत: इसीलिए
ऋषियों ने चेतावनी दी-
'भोग: न भुक्ता व्यमेव भुक्ता
तृष्णा न जीर्णा व्यमेव जीर्णा.......'
भोगों को हम नहीं भोगते
भोग हमें भोग जाते हैं।
तृष्णाएं बूढ़ी नहीं होती
हम ही बूढ़े हो जाते हैं।

भोगों की चाहना जब तक शेष है
व्यक्ति अपूर्ण है,
अपूर्ण है इसीलिए चाहना शेष है।
पूर्ण होना ही
चाहना से दूर निकल जाना है।

अतृप्ति की भूख छलावा है
तृप्ति की भूख भुलावा है
इनसे परे है व्यक्ति का अस्तित्व.........
अपनापन।
जिसे प्रत्यक्ष करने में पूर्णता है.........
हर वासना का अन्त है।

स्वयं तृप्ति है

प्यास नहीं हमारा स्वभाव
हमारा निजत्व तृप्ति है।
स्वयं में स्थित नहीं
इसलिए प्यासे हैं।

प्यास है तो तृप्ति भी जरुर है
प्यास केवल यात्रा है
तृप्ति है–मंजिल।

प्यास अस्थाई है
तृप्ति स्थाई
तृप्ति पाए बिना प्यास समाप्त नही होगी।

यात्रा में–
लगातार यात्रा में
प्यास है.........
और अधिक प्यास।

हम स्वयं को भूले हुए हैं
तभी तो प्यासे हैं।
स्वयं को पहचानना
तृप्त होना है।

सचमुच जो व्यक्ति यह नहीं जानता
कि वह चाहता क्या है
वह कभी सुखी नहीं हो सकता।
हमें चाहना क्या है
यह हम तब तक नहीं जान सकते
जब तक यह न जानें
हम हैं कौन.........
अपना पता लगते ही
प्यास ही नि:शेष हो जाएगी.........

विद्या का सूर्य

कोई भी बाहरी शत्रु
इतना भयानक नहीं
जितने जानलेवा हैं-
भीतर के शत्रु।

बुद्धिहीनता
अविवेक
अश्रद्धा
संशय
आलस्य और प्रमाद
भीतर के प्रबल शत्रु है।

इनके जनक हैं-
काम
क्रोध
लोभ
मोह
और अहंकार।
स्वर्ग प्राप्ति के पांच व्यवधान
नरक तक ले जाने वाले सिपाही।

ये सब ही-
अविद्या
अस्मिता
राग
द्वेष

और अभिनिवेश
पांच क्लेशों के आधार हैं।

इन सभी की जननी है-अविद्या
अविद्या है धुन्ध की गहरी परत.........
अन्धकार की चादर।
अविद्यारोही जहां भी है
अतृप्त है
व्यथित है।
भद्रता से दूर-
दुरित में संलिप्त है।

विद्या का सूर्य काट सकता है
इस अभेद्य धुन्ध की परत को
अन्धकार की चादर
विद्या की किरणों से ही-
छिन्न-भिन्न हो सकती है।

विद्या किसी हाट-बाजार में नहीं बिकती
करोड़ों-अरबों देकर भी यह सम्पदा नहीं मिलती।
अविद्या को दूर नहीं कर सकते-
सैंकड़ों सूरज भी मिलकर।

हां भीतर के सूरज की कोई किरण
हाथ लग जाए,
तो सब साफ हो जाएगा।
इसी धुन्ध में से उजाला फूटेगा
अन्धकार का अस्तित्व
स्वतः हो जाएगा निःशेष।

यही है लक्ष्य

सवाल तो प्राथमिकता का है।

हमारी प्राथमिकता है कहां-कहां
इसी पर निर्भर है-
स्वर्ग-नरक की प्राप्ति-
जीवन का बनना-बिगड़ना।

प्राथमिकता का आधार,
प्रकृति है.........
प्रवृति है.........
निवृति है.........।

कहा गया है -
'मूढ़ हैं वे लोग,
जो इन्द्रयों को विषयों से रोकते हैं
इनके रुकने से मन तो नहीं रुकता
मन रुकता है तभी-
जब रुकती है प्रवृति।'

प्रवृति बदलते ही
सब कुछ ही बदल जाएेगा.........
एक नई दृष्टि.........
नई सृष्टि का सृजन होगा।

तामसिकता का गहन अन्धकार
वासनाओं की पगडण्डियों में भटकाता है
मूढ़ और क्षिप्त बनाता है।

मूढ़ता ही पशुता है
असुर बनना है।
विनाश की कगार से गिरना
दु:ख सागर में घिरना
नरक बन जाना है।
राजसिकता का अहंकार
अनिश्चितता में भटका देता है,
विक्षिप्त बना देता है।

कभी लगती है
वासनाएं प्यारी.........
तृप्ति का स्रोत ....
उपरामता भी छू जाती है कभी-कभी।
कभी नरक तो कभी स्वर्ग में भटक जाता है आदमी।
पथ सूझता है
पर लुप्त भी हो जाता है।

सात्विकता का प्रकाश
शाश्वतता का द्वार दिखाता है।

एकाग्रता का प्रसाद देकर
निरूद्ध बनाता है।
सफलीभूत होता है संयम,
स्व-स्मृति देवत्व का स्पर्श कराती है।

कट जाते हैं-
जन्म-मरण के बन्धन.........
ग्रन्थियां हो जाती हैं छिन्न-भिन्न.........
यही है मुक्ति.........
यही है मोक्ष.........
परमानन्द.........परमधाम.........
परम सत्य.........

उसकी हार कैसी ?

स्वयं पर विजय पानी हो
या दुनियां पर,
शक्ति बाहर से सृजित नहीं होगी
भीतर ही खोजना होगा
शक्ति का स्रोत।

भीतर अगणित स्रोत हैं
बस उन्हें पहचानने भर की जरुरत है।

काम
क्रोध
लोभ
मोह
और अहंकार
डाकू हैं।

डाकुओं को सेन्ध लगाने के लिए
चाहिए होता है-
कोई जर्जर स्थल।
डाकू प्रवेश करते हैं अन्धेरे घर में ही।
जो घर जगमगा रहा हो
जहां प्रज्वलित हो आत्म ज्योति
वहां उनका प्रवेश असंभव है-
एकदम असंभव।

जो स्वयं हो जागरुक
स्थितप्रज्ञ

स्व-स्थ
वहां सेन्ध लगने की कोई गुंजाई ही नहीं।
महत्त्वपूर्ण है स्वयं में स्थित होना
आत्मदीप जलाना
फिर मानव बन जाता है-
अजय और अभय।

जो अजय है
जो अभय है
भला उसकी हार कैसी.... ?

जीवन का उत्कर्ष

यहां हैं बहुत से पवित्र सरोवर
जिनमें स्नान करके
तन-मन पवित्र हो सकते थे।
किया जा सकता था आत्मविकास
फूट सकते थे अपने ही भीतर से
आनन्द के अगणित स्रोत।

मगर तुमने तो कीचड़ सना पोखर चुना
इसमें डूबकर तो
यह सब होना ही था-
जिसे देखकर तू विस्मित है
व्यथित है
उदास है
अतृप्त है
कीचड़ से कीचड़ धुल सका है भला.........

मल-विक्षेप-आवरण में डूबकर रह गया है
तेरा अपना अस्तित्व।
चारों ओर-
बाहर-भीतर निर्मित हो गया है
अन्धकार का साम्राज्य।

सात्विक स्नान से तुम्हें
मिल सकता था देवत्व भी
मगर तामसिकता में डूबकर
तू असुर बन गया.........

देव है-'देवबन्धु'
दिव्य गुणों से ओत-प्रोत
ब्रह्म के प्यारे
ऋतज्ञा:
ऋतपा:
ऋतेजा:
उनके उत्थान की सीमा नहीं।

और असुर है-'देवपीयु:'
दिव्य गुणों के शत्रु
ब्रह्म से दूर
अपना लोक-परलोक बिगाड़ने वाले.........
हड्डियों का ढांचा बनकर
बिखर जाने वाले।

जीवन का संवरना-बिगड़ना
मात्र संयोग नहीं-
संघर्ष है।
दिव्यता पाना ही जीवन का उत्कर्ष है।

अब भी चेत-
'श्रृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्रः
उतिष्ठ
जाग्रत
प्राप्य वरानिवोधत्....।'

वही है आत्मवेता

श्रुति का कथन है-
यदि आत्मा को जाने बिना
यहां से चले जाओगे
तो इसका बहुत बड़ा दण्ड मिलेगा।

तुम्हें युगों-युगों तक
अन्धकार पूर्ण योनियों में भटकना होगा,
भोगनी होगी नरक की घोर यातनाएं।
इसलिए आत्महन्ता न बनों-
आत्मचेता बनों।

परमात्मा के आदेश का जो उलंघन करता है,
वह आत्महन्ता है।
जो चलता है परमात्मा के आदेश पर,
वही है-
आत्मवेता।

इतना सरल तो नहीं आत्मचेता होना
मगर बहुत कठिन भी नहीं।
बस एक दृढ़ संकल्प भर की जरुरत है।

संकल्प यदि दृढ़ है-
संसार की कोई शक्ति तुम्हें
आत्मचेता बनने से नहीं रोक सकती।

और यदि संकल्प की डोर ढीली है
तो हजारों-हजारों महापुरुष-
गुरू-युगद्रष्टा भी-
तुम्हें नहीं बना सकते आत्मचेता।

आत्म-साक्षात्कार

तुम जिस हवा को
बेहोशी में रुक गए हो
जिस संगीत पर मुग्ध हो गए हो
जिस झरने के पानी को
अमृत समझ बैठे हो
इनके आस-पास ही कहीं मृत्यु है।
विनाश है
अतृप्ति है
प्यास-एक अन्तहीन प्यास।

यहां जो
छायादार वृक्ष खड़े हैं
बाग-बगीचे हैं
फूल हैं
महक है
सब मात्र अनुभूतियों का ही छलावा है।

यहीं से वह मोड़ शुरु होता है
जहां से व्यक्ति एक लम्बी
अन्तहीन यात्रा में भटक जाता है,
सदा-सदा के लिए.........

ये सब मायावी राक्षस के
साम्राज्य विस्तार हेतु
प्रयोग आने वाले-
हथियार हैं

यह जंगल तुम्हारे ही लिए नहीं बना है
यह तो युग-युगान्त से है-
अपने पूर्ण अस्तित्व के साथ।

सभी को यहीं से होकर गुजरना होता है........
और कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं।
इसी जंगल की राह में
एक स्थान वह भी है
जहां एक चिड़िया डाल पर बैठी
युगों-युगों से अमरत्व का सन्देश बांट रही है।

जो कोई भी उसके बोल सुन पाता है
उसके हाथ लग जाते हैं-
कुछ शाश्वत सत्य
जिन्हें कवच बनाकर
मुखौटाधारी राक्षसों से बचा जा सकता है।

और तब यही-
हवा
झरना
छायादार वृक्ष
बाग-बगीचे
फूल
महक
मृत्यु नहीं-अमरता के स्रोत बन जाते हैं।

पूर्ण
निर्भ्रान्त

मन एक भटकाव है

अब तो अनुभूति के स्तर पर
बिल्कुल साफ हो गया-
मन के जंगल बनें रहने तक ही
अन्धकार का साम्राज्य है
भ्रम है
व्यथा है।

मन जब व्यष्टि तक सिमट जाता है
अपने ही आस-पास ढेरों-ढेर
कामनाओं की पगडण्डीयां निर्मित कर लेता है।
एक ही कसौटी पर टिक जाता है-
'मुझे क्या मिला-
मेरी ऐषणाएं कहां तक तृप्त हुई.....'

मैं तक सीमित यह मन
काम, क्रोध और लोभ के वर्तुल में ही
चक्कर काटता रहता है।
यही तो है दुःख-नरक का द्वार।
मन ही नरक की यातनाओं का स्रोत है।

मन एक भटकाव है.........
मृगतृष्णा.........
अन्तहीन वासनाओं के जंगल में भटकने का प्रयास।

मन का 'मैं-पन' अहंकार बन जाता है
तभी एकत्रित होता है
दुनियां भर का सन्ताप।

मन का 'मैं-पन'
जब समस्त दीवारें तोड़कर
समष्टिगत हो जाता है
तभी खुल जाते हैं-
स्वर्ग के द्वार।
मन है-
सन्ताप तक जाने का माध्यम
मन ही है-
मुक्ति तक पहुंचने की युक्ति।

मन की लगाम ढीली होते ही
सन्ताप डाल देते हैं अपना डेरा
यही लगाम स्वाधीन होने पर
मुक्ति की न्यामत मिलती है।

मन के थमते ही-
थम जाते हैं समस्त संकल्प-विकल्प
चित्त वृत्तियां समाहित हो जाती हैं
व्यक्ति योगी हो जाता है.........
'योगश्चितवृति निरोध:'
यह सत्य प्रत्यक्ष होता है।

जीवन-मृत्यु

धूप की एक किरण
रोशनदान से होकर
मेरे कमरे की दीवार पर
आ बैठी।

त्रिभुज सी
लाईब्रेरी की पुस्तकों पर तैरती हुई
एक बड़ी आयत बनकर
फर्श पर उतर आई।

आहिस्ता-आहिस्ता
सरकती हुई
दरवाजे की दहलीज तक पहुंचते-पहुंचते
बिन्दू बनकर, डूबती-उतराती
लुप्त हो गई।

अन्तरदृष्टि

कालगति के कारण भले ही
सूरज घटाओं में छुप जाए
उसकी आवाज हवाओं में दब जाए
यमराज चलती सांसों में अटक जाए
तो भी कहीं कुछ नहीं बिगड़ता।

शर्त यह है कि-
अन्तरदृष्टि खुली हो।

मानस मन में ही चेतना की
नई रोशनी दिखती है.........
जिसका विस्तार निरन्तर होता जाता है-
आत्मा से परमात्मा के मिलन तक.........
अमरत्व के फलक तक.............

बून्द से सागर

भय का कारण है-पाप
पाप रहित होना ही निर्भय होना है
निर्भयता से पाप वृति-
निर्मूल हो जाती है।

अहंकार पाप के साधन जुटाता है
निरअंहाकरी होना है-
पाप से पूर्णतय मुक्ति।
अहंकार का उपचार है-समर्पण।
समर्पण उस परम ऊर्जा से
मन, वचन, कर्म से जुड़ जाना है।

जगनियन्ता की महानता,
व्यवस्था,
न्यायप्रियता का आभास होते ही
समर्पण के बीज पनपते हैं।
समर्पण निरअंहकारिता
और निर्भयता का मूल मंत्र है।

क्षूद्रता से महानता की डगर पर
पांव रखना है.........
निर्बल से सबल होना है.........
महानतम शक्ति से जुड़ जाना है।

एकाकी बून्द का अस्तित्व समाप्त हो सकता है-
किसी हल्के से ताप से ही
मगर समर्पण-
बून्द से सागर हो जाना है।

केवल मैं

मैं हूँ आत्मा-
शुद्ध
बुद्ध
नित्य
अशरीरी
अनाम।

पाँच भूतों के सम्पर्क में
नमक की डली सम घुल जाने पर
भूतों के प्रकटीकरण में
विभिन्न शरीरों में
मैं लगता हूँ-
उन-उन जैसा ही।

बन्ध जाता हूँ
संज्ञा में
नाम-धाम में
सम्बन्धों में
सुख-दु:ख में
हानि-लाभ में
हास्य रूदन में।

ऐसी स्थिति में
मैं सूंघता हूँ
बात करता हूँ
खाता-पीता हूँ

हंसता-रोता हूँ
घड़ी में तोला
घड़ी में माशा होता हूँ।
यह नहीं मेरी वास्तविक स्थिति
जब मैं पंचभूतों से अलग होता हूँ
तब केवल मैं होता हूं।

केवल मैं-आत्मा
शुद्ध
बुद्ध
नित्य
अशरीरी
अनाम..........

विकल्प स्वीकार न हो

सन्देह नहीं
तुम चढ़ सकते हो दुर्गम पहाड़
संचित कर सकते हो
भौतिकता के अम्बार।

कारें
कोठियां
बैंक बैलेंस
पुत्र-पौत्र
नाते-नाती
पर इनसे भीतर की प्यास नहीं बुझ पाती।

आत्म तृप्ति के सूत्र यदि हाथ नहीं लग सके
तुम्हारी समस्त यात्राएं विफल हैं
संचित साधन शून्य है।
ये सब तो आँखें बन्द होने तक ही अपने हैं-
आप मरे जग प्रलय.....।

वह जो पाना है
वह जो संचित करना है
वह जो जन्मों का साथी है
वह जो जन्म-मरण का मुक्ति मन्त्र है
वह तो कुछ और है।

भौतिकता से परे-
वही है प्राप्य
अशंसय वही है मुख्य
शेष तो सब गौण है।
उसी की प्राप्ति हेतु
मन-वचन-कर्म से सन्नध हो जाएं
तो लक्ष्य पूरा होगा।
गौण के लिए तो-
हो सकते हैं बहुत विकल्प
मुख्य के लिए-
कोई विकल्प स्वीकार न हो।

खुशबू

खुशबू का कोई रंग रूप नहीं होता
खुशबू तो खुशबू होती है
जिसका स्रोत-
फूल-पेड़-पत्ते हो सकते हैं।
घर-आंगन-चौराहा,
जंगल-खेत-खहिलान,
मकान-मिट्टी भी
खुशबू का माध्यम बन सकती है.........

खुशबू कहीं से भी उठे
उसमें जीवानन्द की सच्चाई होती है।

वह तुम्हें भाव-ताव में नहीं मिलेगी
घाट-बाट-हाट में उसे नहीं पा सकते
वह तो एक चिरन्तन प्रवाह है
जो कहीं से भी उठ सकता है-
ऊपर-नीचे
दाएं-बाएं
यहां-वहां से.........

खुशबू का कोई पर्याय नहीं होता-
खुशबू तो बस खुशबू होती है।

खुशबू केवल प्रेमिका और पत्नी में ही नहीं होती
वह मां के दामन से भी आ सकती है।
प्रेमी और पति से ही नहीं
वह बाप के कर्मठ हाथों से भी फूट पड़ती है।

खुशबू की अनुभूति के लिए
केवल घ्राण शक्ति ही नहीं-
दिल और दिमाग के कपाट खुले होने चाहिए।
बस फिर जहां तुम खड़े हो
वहीं-
ठीक उसी जगह पर
पूर्णत: खुशबू में डूब जाओगे।

फिर उसे तलाशने के लिए
पहाड़ चढ़ने
या पगडण्डीयां नापने की जरुरत नहीं होगी।

उसकी पहचान के लिए
ग्रन्थों-
प्रयोगशालाओं में
खपने की जरुरत नहीं होगी।

तुम स्वयं ही-
हां-हां तुम स्वयं ही-
खुशबू बन जाओगे,
क्योंकि-
तुम्हीं तो खुशबू हो।

मेरा कुछ नहीं जलेगा

लाख शत्रुओं का समूह घेरे हुए हो,
चारों ओर हों भंयकर चक्रव्यूह
भंवर में नैया डगमगा रही हो
घोर अन्धकार में पथ सूझता न हो
फिर भी आदमी का कुछ नहीं बिगड़ता।

जिसने आदर्श के लिए जीना सीख लिया
उसके लिए संकट-संकट नहीं
मृत्यु भयावह नहीं
अप्रत्याशित नहीं।

अपने आदर्श को
निज स्वरूप को बचाने हेतु
सर्वस्व दांव पर लग जाए
तो भी कम है।

विदेह कहते हैं-
'लोग समझते हैं
आग से जल जाता है सर्वस्व
मगर सारी मिथिला नगरी भी जल जाए
तो भी मेरा कुछ नहीं जलेगा।'
यदि मुख्य बच जाए,
तो गौण का नष्ट हो जाना.........
जल जाना.........
ध्वस्त हो जाना.........
कोई मायने रखता ही नहीं।

वृत्ति सारूप्य

नदी बह रही है
निरन्तर।
हर मौसम में
रात-दिन
प्रात:सायं
नदी बह रही है.........

कहां से आता है
इतना पानी।
नदी दादा के समय में भी थी,
परदादा
और परदादा से पूर्व उनके परदादा के समय भी।
तब से अब तक
नदी बह रही है.........

नदी जागरूक है
अपने होने के प्रति।
इसलिए कभी-
वह रुकती नहीं।
अविरल.........
बह रही है नदी ....

वह कहता है
नदी गाती है।
वह कहता है
नदी नाचती है।

वह कहता है
नदी रोती है।

वह कहता है
नदी हंसती है।
पर हर दशा में-
नदी बह रही है.........
हम रोते हैं
नदी रोती है।
हम हंसते हैं
नदी हसंती है।
हम गाते हैं
नदी गाती है।
हम नाचते हैं
नदी नाचती है।

क्योंकि-
हम, हम है
और नदी, नदी है।
पर दोनों में कहीं न कहीं-
वृत्ति सारूप्य है।

एक संभावना से हटकर
दूसरी संभावना.........
दूसरी से तीसरी संभावना की तलाश में-
नदी आज भी बह रही है.........

मुमुक्षुत्व

मात्र होठों की पुकार पर्याप्त नहीं
हृदय की गहराईयों से निकली पुकार जरुर सुनी जाएगी।
मुमुक्षुत्व नहीं है कोरा प्रलाप
वह हार्दिक पुकार है-
आन्तरिक क्रन्दन।

हम पुकारते हैं-
धन को
प्रतिष्ठा को
वैभव को
स्वार्थ को।

कभी प्रभु को पुकारते भी हैं-
तो भी लक्ष्य रहता है मात्र ऐषणाओं की पूर्ति ही।
हमारी इस नीयत की उसे पहले ही खबर है
उसे धोखा देना असंभव है।

उसे भ्रमित करना-
स्वयं भ्रम में भटकना है
भ्रममय पुकार, पुकार नहीं भ्रम ही है-
कोरा भ्रम।
भ्रम व्यक्ति को क्षणिक तुष्टि तो दे सकता है
आत्म तुष्टि नहीं।

मुमुक्षुत्व और कामना का कोई मेल नहीं
जहां कामना है-

वहां मुमुक्षुत्व नहीं।
जहां मुमुक्षुत्व है-
वहां कामना नहीं
कामनाओं के जंगल में भटकने वाला
मुमुक्षुत्व का स्पर्श तक नहीं कर सकता-
छू तक नहीं सकता, उस दिव्य भाव को।
मुमुक्षुत्व की पुकार अनसुनी हो
यह असंभव है।
मुमुक्षु होना ही-
उस दिव्यतम का हो जाना है.........
उसे पूर्णतय पा लेना है।

मुमुक्षु होना-
बहुत गहन है.........
अद्‌भुत है......... अनुपम है.........
सर्वोच्च शिखर है।

वह शिखर तुम यहीं छू सकते हो,
यहीं-इसी स्थान।
यहीं, इसी समय।
अभी, हां बिल्कुल अभी।

बस पुकार में गहनता चाहिए
क्रन्दन में भूख चाहिए।
मेले में मां से बिछुड़े हुए शिशु जैसी.........
जो निरन्तर पुकारता है-
मां.........मां.........मां.........

उसे आप धन दो,
ठुकरा देगा।
सुन्दरतम खिलौने दो,

ठुकरा देगा।
स्वादु से स्वादु मिठाई दो,
उसे भी ठुकरा देगा।

उसे तो बस मां चाहिए......... मां
इससे कम पर उसका किसी से भी समझौता नहीं।
कभी देखी है उसकी आतुर पुकार.........
वही पुकार जब भीतर से जग नियन्ता के लिए उठेगी.........
वही है मुमुक्षुत्व भाव.........
आतुर पुकार.........
दुनियां के सब प्रलोभन जहां बेमानी हो जाएं
दुनियां के सब भोग व्यर्थ हो जाएं
सारी दुनियां ही जिसके लिए-
अंकिचन हो जाए......... नगण्य हो जाए.........
मां.........मां.........मां......... बस उसे तो चाहिए-
केवल मां.........मां.........

भोग और योग

जगनियन्ता बहुत दयालु है।

भले कार्य के संकल्प पर
उत्साह, उमंग और उल्लास से प्रेरता है
कुकुर्म से रोकने हेतु-
भय शंका और लज्जा का संकेत देता है
यही है बनने और बिगड़ने का 'टर्निंग प्वाईंट'।

जो भी यहां से भूला
कोसों-कोस भूलता ही चला जाऐगा।
वासना और असुरता तक.........
उससे भी बहुत नीचे.........।

और जो संभला
संभलता ही चला जाऐगा
पवित्रता और देवत्व तक.........
उससे भी बहुत ऊपर.........।

भोगों का सिलसिला,
कब से आरंभ हुआ-
कोई अन्तिम सत्य के रूप में कह नहीं सकते
संभवतः देवत्व के महल की नींव में
जब किसी जहरीले नाग ने प्रवेश किया होगा
ठीक तभी से-
इस जहर का पौधा उग आया होगा।

उसी जंगल में भोग रूपी पशु ने
सर्वप्रथम प्रश्रय पाया होगा
और फिर कई रूपों में विकसित होकर

मानव को छला होगा।
विचारों की दो ही धाराएं हैं-
विवेक पर चलने वाली धारा योग है,
श्रेय पथ से होती हुई
उपलब्धि तक ले जाती है।

उपलब्धि सत्य की,
आनन्द की,
अमरत्व की,
यही मार्ग घर तक ले जाता है।

अविवेक पर चलने वाली धारा भोग है
प्रेय पथ से होती हुई-
विनाश तक ले जाती है।

विनाश शरीर का,
मन का,
प्राण का,
यही मार्ग जंगल में भटकाता है।

प्रेय पथ प्रथम प्रिय-
अन्त कटु है।
श्रेय पथ प्रथम कटु-
अन्त प्रिय है।

योग और भोग
दो विपरीत धाराएं हैं।
भोग का रुकना योग का आरंभ,
और योग से भटकना भोग की दलदल है।

एक म्यान में दो तलवारें
न कभी समाई हैं-
न ही कभी समा सकेंगी.........

तुम ही जानों

मैं तो अमरत्व खोजने निकला था-
ये मृत्यु के साधन,
कहां से......... कैसे जुट आए...... ..
यह व्यथा और संताप का सागर
कहां से उमड़ आया......... ?

दु:खों के प्रबल थेपेड़े
और अधिक ....
और भी अधिक विकट पहाड़,
बियावां जंगल,
बदन काटते कांच की नुकीली करीचों सम
क्यों चुभ रहे है......... ?
उबलते पानी की तरह-
सिर पर क्यों बरस रहे है......... ?

क्या अमरत्व पाने के लिए
यह सब झेलना जरुरी है.........
क्या यह है कोई परीक्षा की घड़ी.........
या कर्मों की मलिनता की शुद्धि का अनुष्ठान.........
शान्ति से पहले के झंझावात्.........

यह जलन बहुत ही भयानक है.........
जानलेवा है.........
बहुत गहरा कुरेदती है.........
एकदम जैसे-
साक्षात् मृत्यु ही सामने आ खड़ी हो.........
बिल्कुल भी सही नहीं जाती।
कबीर संभवत: इसीलिए

तड़प कर कह उठे थे-
'आठ पहर का दाझना
मोसे सहा न जाए.........'
क्या यह भी साधना का ही एक हिस्सा है?
हो सकता है
साक्षी भाव की सिद्धि के मार्ग का ही
यह एक पड़ाव हो
हो सकता है यह दुःख
यह अतृप्ति का फैलाव
सुख और तृप्ति पाने हेतु
निन्तात अनिवार्य हो।

हे प्रभो!
दुःख दो,
सन्ताप दो,
अतृप्ति दो,
इससे भी चाहे अधिक ताप दो,
पर यह सब सहने की शक्ति भी
तुम्हीं दो।

यह मांग भी मगर-
अहंकार प्रसूत है।
तुम्हीं जानों-
जो चाहो दे दो
अतृप्ति या तृप्ति

आज से यह मोह भी छोड़ता हूँ
तुम जानों
जो चाहो
दे दो
जो न चाहो
न दो.........

कीचड़ में निर्लिप्त

साधुपन है-
वृत्तियों की साधुता,
सरलता,
सत्यता,
ऋजुता,
आन्तरिक बदलाव।

साधुपन मात्र दिखावा नहीं
मन-वचन-कर्म की-
एकात्मकता है।
आध्यात्मिकता दिखने में नहीं
आध्यात्म हो जाने में है।

साधु ब्रम्ह कवच में सुरक्षित
काम, क्रोध, लोभ, मोह से उपराम
अहंकार शून्य
स्व में स्थित
एक अमर अनुभूति है।

तालाब के जल में
ज्यों रहता है-
कमल.........
साधु पवित्रता का पर्याय है.........
तृष्णाओं के कीचड़ में भी निर्लिप्त।

शान्त
निरूद्ध
अकाम
अविक्षिप्त
निष्कामता में अनुरक्त।
साधु प्यास नहीं-
तृप्ति है।
कालिमा नहीं-
दीप्ति है।

साधु अभाव की समाप्ति है
वह जहां भी है
जैसा भी है
जैसे भी है
पूर्णता में है।

जिन खोजा तिन पाया

भीतर की स्वतन्त्रता के समक्ष
बाहर की स्वतन्त्रता
बेमानी है.........
बौनी है।

बाहर की बेड़ियों से जकड़ा हुआ व्यक्तित्व
कोई मायने नहीं रखता
यदि भीतर की स्वतन्त्रता कायम हो।
जिसने भीतर की बेड़ियां काट लीं हों
वह सात तालों में बन्द होते हुए भी-
आजाद है.........
मुक्त है.........

सहज और सरल नहीं यह उपलब्धि
मगर परमात्मा की अमर कृति मानव के लिए,
इस संसार में असंभव कुछ भी नहीं।
किसी ने कितना सत्य कहा है-
'असंभव शब्द केवल-
मूर्खों की डायरी में लिखा होता है।'
मूर्खता ही है बन्धन
वही है अज्ञानता
भटकाव
और बेचारगी।

ज्ञान है मुक्ति,
स्थायित्व

और उपलिब्ध।
यह करोड़ों व्यय करके भी नहीं मिलता
क्योंकि इसका स्रोत-
अपने ही भीतर है,
बस टटोलने भर की जरुरत है।

जिसने खोजा हो,
उसे न मिला हो,
यह बात सत्य से दूर-
अकल्पनीय है।

'मैं बेचारा बूड़न डरा,
रहा किनारे बैठी........'
इस उक्ति का राही
सत्य से दूर भटक कर,
उपलब्धि से वंचित ही रह जाता है
मगर
'जिन खोजा तिन पाया........'
यह उक्ति यथार्थ है,
ध्रुव सत्य है

अहंकार का महल

समर्पण में बहुत शक्ति है
समर्पण का शत्रु है-अहंकार।
अहंकार जहां है-
समर्पण का प्रश्न ही नहीं

अहंकार समर्पण का ही नहीं-
सेवा का
सहयोग का
भ्रातृभाव का
प्रार्थना का
जीओ और जीने दो के सिद्धांत का-
भी प्रबल शत्रु है।

अहंकार पति-पत्नी में
बाप-बेटे में
भाई-भाई में
और राष्ट्र-राष्ट्र में अलगाव पैदा करता है।
यही अलग किए हुए हैं-
आत्मा को परमात्मा से।

अपनी पहचान यदि सही-सही हो जाए,
अपनी सीमाओं,
सामर्थ्य का यदि ज्ञान हो जाए,
तो अहंकार का महल पल में ध्वस्त हो जाए।

स्व को भ्रमवश
बहुत बड़ा आंकना ही तो अहंकार है
अपनी सही पहचान ही अहंकार की मृत्यु है।
समर्पण का पर्व
अन्ततः आनन्द है,
समाधि है.........
चिरस्थाई मिलन है।

अहंकार मिटे तो उस उद्‌भुत मिलन में
एक क्षण भी न लगे।
स्व की पहचान ही तो उपलब्धि है–
'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्
कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा.........'

मन की मृत्यु

यूँ देखने में मन के हजार ठिकाने हैं
पर वह टिकता कहीं भी नहीं।

उसे तो हर पल कुछ नया चाहिए
पुराने से वह जल्दी ही ऊब जाता है।
जिस नए को खोजता है-
मिलने पर वह भी
उसी क्षण पुराना हो जाता है।

बस यही है मन की दौड़
पुराने से नए तक
और नए से पुराने तक.........
तभी तो वह चंचल है.........

इस वर्तुल को तोड़ने का नाम ही-
ध्यान है,
उपासना है,
साधना है।

ध्यान दौड़ना नहीं रुक जाना है
ध्यान से इसीलिए मन डरता है
प्रथम, उस प्रक्रिया से
और भी चंचल होकर भागता है।

ध्यान उसे अपना काल लगता है।
साक्षात् मृत्यु।

ध्यान है ही मन की मौत

ध्यान है स्थिरता

मन है चंचलता

चंचलता की समाप्ति मन की मृत्यु है।

वास्तव में देखें

तो मन का कहीं अस्तित्व ही नहीं

एक झील की लहर है-

कभी छोटी तो कभी बड़ी लहर

लहर की चंचलता यदि स्थिरता में बदल जाए,

तो लहर है ही कहां......... ?

लहर के शान्त होने पर

वह झील ही तो है.........

स्थिर.........

अडिग.........

और शान्त.........

अद्‌भुत मिलन

तनिक सोचो तुम दुःखी क्यों हो
कुछ खो गया क्या इसलिए......... ?
तुम लाए क्या थे अपने साथ-
जो खो गया......... ?

यदि कुछ खोया भी है
तो वह यहीं से तो लिया था।
या जो मिला था-
उससे इतना जुड़ गए थे
कि अब उसका अभाव सहा नहीं जाता?

कुछ पाने से पूर्व
उस स्थिति में भी तुम जी रहे थे
फिर जो मिला
उसके खो जाने से इतना दुःखी क्यों हो
वह सब कुछ न था तो तुम क्या थे
वह सब मिला तो तुम क्या थे
वह सब खो गया तो-
अब तुम क्या हो......... ?

चिन्तन की गहराई में यदि उतरोगे
तो प्रत्यक्ष होगा-
तुम्हारा निज स्वभाव न दुःखी होना है
और न ही सुखी होना।

कुछ मिला तुम सुखी हो गए
वह खो गया तुम दु:खी हो गए
सुख-दु:ख की अनुभूति-
प्रकृति और शरीर जन्य अविद्या है।
तुम हो इससे परे.........
पाने-खोने के इस गोरख धन्धे से,
सुख:दु:ख के इस त्रास से,
बचने के लिए-
हर एषणा पर पैनी दृष्टि डालो
प्रलयावस्था का सृजन.........
निरन्तर आत्मिक गहन चिन्तन.........

मिलने खोने वाली वस्तुएं-
जो तुम्हें दु:ख देती हैं
जो तुम्हें सुख देती हैं
कभी सदा रही नहीं थी-
न ही सदा रहेंगी ही,
फिर क्यों चिपके हो उनसे
मिटा दो उनके स्मृति चित्र भी।

प्रलय होगा.........
सूर्य, चन्द्र, तारे, गृह-उपगृह सब टूटेंगे.........
तुम्हारे अपने .... तुम्हारे बेगाने ....
तुम्हारे मित्र......... तुम्हारे शत्रु......... तुम्हारा मैं.........
बिखरेगा .... टूटेगा......... समाप्त हो जाऐगा.........
तुम हो जाओगे सुख-दु:ख की कारा से मुक्त.........
बिल्कुल अछूते.........

संसार की समस्त समस्याएं
सुख-दु:ख
हानि-लाभ

जय पराजय
जुड़ना बिछुड़ना
सब मृत्यु तक ही तो है ?
तभी तक है सम्बन्ध
तभी तक है मोह और शोक।
शरीर और प्रकृति की
प्रलयावस्था का साक्षात्कार
तुम्हें वास्तविक स्व तक ले जाएगा।
मृत्यु अमरत्व का द्वार खोलेगी
आत्म तत्व परमात्म तत्व को पुकारेगा........
निर्मूल होगा झूठा अहंकार.........
नि:शेष होंगे पंच क्लेश।

तम-रज सत पराभूत होंगे
नित्य-अनित्य
जड़-चेतन
शुचि-अशुचि का ज्ञान प्रकट होगा
'निर्माणचित' की अवस्था
खोल देगी सब भेद
सफलीभूत होगी यात्रा
आत्मा-परमात्मा का अद्‌भुत मिलन........

आकाश अनन्त है

अनन्त है.........
उत्थान के मार्ग।
पतन के मार्ग भी अनन्त हैं।
अनन्त हैं मुक्ति की राहें
अनन्त हैं बन्धन की बाहें।

प्रकृति अनन्त है
पुरुष अनन्त है
पुरुष विशेष भी अनन्त है।

अनन्त हैं पांच तत्त्वों के स्वरूप
समुद्र अनन्त,
नदियां अनन्त,
ग्रह–उपग्रह अनन्त,
आकाश अनन्त है।

फूल अनन्त
कांटें अनन्त
कर्म अनन्त
जन्म अनन्त
सुख अनन्त
दु:ख अनन्त
अनन्त दिशाएं अनन्त हैं।

अनन्त हैं वासनाएं
अनन्त हैं साधनाएं

एपणाएं अनन्त
वर्जनाएं अन त
विनाश अनन्त
विकास अनन्त
वृत्तियां अनन्त
स्मृतियां अनन्त हैं।
इसी अनन्त में हैं-
अनन्त की खोज।

अनन्त है प्रकट ब्रम्ह
अप्रकट ब्रह्म भी अनन्त है।

अनन्त का अन्त पाना-
बेमानी है।
अनन्त में स्वयं की स्थापना
स्वयं में अनन्त की प्रतिष्ठा
अनन्त की पहचान
अनन्त की स्मृति
अपेक्षित है.........

अनन्त में जन्म
अनन्त में मरण
अनन्त में अनन्त का समर्पण-
मात्र सार्थक है,
शेप सब अकारथ है.........
निरर्थक।